वैश्विक असंतुलनों के प्रति मौद्रिक और वित्तीय नीतिगत प्रतिसाद*

राकेश मोहन

''वैश्विक असंतुलनों के प्रति मौद्रिक और वित्तीय नीतिगत प्रतिसाद'' विषय पर वार्षिक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार 2006 में यह सम्मेलन आयोजित करने के लिए मैं बैंक ऑफ इंडोनेशिया को साधुवाद देना चाहूँगा। यह एक ऐसा मुद्दा है जो गत कुछ वर्षों से केंद्रीय बैंकरों के बीच सर्वोच्च चिंता का विषय रहा है। अतः इस शुभ अवसर पर इस विषय पर चर्चा करना हम सभी के लिए स्वागतयोग्य है।

भारी वैश्विक असंतुलनों के इस मुद्दे पर इस दशक की शुरुआत से ही अंतरराष्ट्रीय मंचों और क्षेत्रीय सम्मेलनों और सेमिनारों दोनों स्तरों पर व्यापक रूप से चर्चा की जा चुकी है। भारत में, हमने इस मुद्दे को अपनी वार्षिक रिपोर्टों और वार्षिक नीति संबंधी वक्तव्यों में नियमित रूप से रेखांकित किया है। भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. वाई.वी.रेड्डी ने भी इन मुद्दों पर अपने दो व्याख्यानों में चर्चा की है।

यह नोट करना प्रासंगिक होगा कि जहाँ वैश्विक असंतुलनों की विद्यमानता (अस्तित्व) को भली भांति स्वीकार किया गया है, फिर भी संभावित प्रभाव और किन नीतिगत प्रतिसादों पर विचार किया जाना चाहिए, इसका अभी तक कोई निश्चित उत्तर नहीं है। अतः इस प्रकार के सेमिनार वैश्विक असंतुलनों के प्रभावों का पता लगाने में उदीयमान बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) तथा विकसित देशों दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

आज की अपनी वार्ता में मैं सर्वप्रथम वैश्विक असंतुलनों की संकल्पना का संक्षिप्त परिचय दूंगा, साथ ही इन असंतुलनों को दूर करने के लिए शुरू की गई हाल ही की वैश्विक पहलों को भी रेखांकित करूंगा। इसके बाद इस दिशा में अपेक्षित और प्रयासों पर चर्चा की जाएगी। इसके बाद हाल के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था द्वारा दर्शाई गई शक्ति और ऊर्जस्विता की पृष्ठभूमि में वैश्विक असंतुलनों पर भारतीय परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करूंगा।

I. वैश्विक असंतुलन : संकल्पना और योगदान करनेवाले कारक

संकल्पना

संकल्पना की दृष्टि से एकल देश के परिप्रेक्ष्य में असंतुलन तब उभरते हैं जब अर्थव्यवस्था निरंतर आधार पर चालू खाता घाटा या अधिशेष दर्शाती है, जो अनिवार्यतः एक व्यापक आर्थिक ढांचे में भारी घरेलू बचत-निवेश अंतरालों का बाह्य प्रकटीकरण है। तथापि ग्लोबल परिप्रेक्ष्य में सैद्धांतिक रूप में भुगतान संतुलन की हैसियत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कुछ देशों में उच्च अधिशेषों का अन्य देशों में उतने ही घाटों द्वारा मिलान किया जाता है। इस प्रकार, एक देश के बाह्य खाते में भारी अधिशेष या घाटे के उभरने का तात्पर्य है उसकी विपरीत हानि का कहीं अन्यत्र होना। अतः वैश्विक चिंता स्वतः चालू खाता घाटे या अधिशेष के विद्यमान होने के बारे में नहीं है, परंतु यह विशेषकर बड़ी और सर्वांगी रूप से महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं में भारी घाटे या अधिशेष के निरंतर बने रहने के बारे में हैं।

वास्तव में, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली में आज वैश्विक असंतुलनों से तात्पर्य अमरीका के भारी और बढ़ते हुए चालू खाता घाटा (सीएडी) और तदनुरूप अन्य क्षेत्रों, विशेषकर, एशिया में भारी अधिशेषों से है। इन असंतुलनों की मात्रा बहुत बड़ी हो गई है विशेषकर, एशियाई संकट के बाद उसने ऐसी वैश्विक असंतुलनों की अनिवर्हनीयता तथा आम तौर पर वैश्विक अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाने वाले अव्यवस्थित समायोजनों के अवसरों के मुद्दे खड़े कर दिए हैं।

योगदान करने वाले कारक

(i) अमरीका में जुड़वां घाटे

चालू वैश्विक असंतुलन का मुख्य कारण भारी और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अमरीका का चालू खाता घाटा है जिसका वित्तपोषण अन्यत्र बने अधिशेष, विशेषकर, उभरते एशिया, तेल निर्यातक देशों और जापान द्वारा किया गया है। अमरीका चालू खाता घाटा का अनुभव 1982 से प्रत्येक वर्ष करता रहा है। 1990 के बाद के दशक के मध्य तक अमरीका चालू खाता घाटा उसके सघउ के 3 प्रतिशत के नीचे बना रहा। तथापि तब से लेकर यह काफी बढ़ गया है। अमरीका में सूचना प्रौद्योगिकी के गुब्बार के फटने के बाद की अवधि से उच्च निभावकारी मौद्रिक नीति और विस्तारवादी राजकोषीय नीतियां बनाई गई। एक ओर ब्याज दरों में गिरावट ने आवास-निर्माण की धूम रही जिससे आवास और अन्य आस्तियों के मूल्यों में वृद्धि हुई, जबकि दूसरी ओर राजकोषीय प्रेरणा ने खपत में वृद्धि की। जहाँ अमरीका में वास्तविक गतिविधि ने शेष विश्व में गतिविधि को प्रेरित

* डॉ. राकेश मोहन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 16-17 नवंबर 2006 को आयोजित बैंक ऑफ इंडोनेशिया वार्षिक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में प्रस्तुत आलेख। इस आलेख में आर.के.पट्टनायक और संगीता मिश्रा की सहायता को साभार स्वीकार किया जाता है।

किया, वहीं इसके साथ बड़े और बढ़ते हुए जुडवां घाटे भी रहे हैं - राजकोषीय और चालू खाता घाटे। समग्र राशि की दृष्टि से, अमरीका चालू खाता घाटा में 1995 के 114 बिलियन अमरीकी डालर की तुलना में 2005 में 791 बिलियन अमरीकी डालर तक बढ़ जाने से सात गुना वृद्धि देखी गई है। सघउ के प्रतिशत की दृष्टि से अमरीका का चालू खाता घाटा 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों से प्रत्येक पांच वर्ष में पहले से दुगना हो जाता है। 2005 के दौरान सघउ के प्रति सीएडी का अनुपात सघउ के लगभग 6.4 प्रतिशत के समीप था, जो अमरीका के लिए कभी भी बने सीएडी का सर्वोच्च स्तर है (सारणी 1)।

इसमें व्यापक रूप से सहमति है कि बढ़ते हुए आस्ति मूल्यों से उभरती धन के प्रभावों ने, विशेषकर आवास निर्माण के क्षेत्र में, भी अमरीका में बचतों की दरों को निम्नतर करने और खपत की दरों को उच्चतर करने में भारी योगदान किया है। अमरीका में भारी चालू खाता घाटे और राजकोषीय असंतुलनों की झलक बचत निवेशों के बीच विसंगति से भी मिलती है जो वर्तमान दशक में भारी रूप से बढ़े हैं। निजी निवल बचत अमरीका में 1980 के बाद के दशक के सघउ के 8 प्रतिशत से गिरकर 2003 में 2 प्रतिशत से भी कम की रह गई है।

(ii) उभरती अर्थव्यवस्थाओं में अधिशेष

अमरीका जिसने घरेलू मांग को प्रेरित किया के विपरीत एशिया तथा अन्य उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि 1990 के बाद के दशक के अंतिम वर्षों से बाह्य मांग से प्रेरित रही है। चालू खाता ने 1999 से, विशेषकर चीन और अन्य पूर्वी एशियाई उभरी बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) (इंडोनेशिया, मलेशिया, ताईवान, थाईलैंड) ने भारी अधिशेष दर्शाए हैं। दो द्वीपीय अर्थव्यवस्थाओं अर्थात्, हांगकांग और सिंगापुर ने भी भारी मात्रा में वृद्धि दर्ज की है। भारत ने भी 2001 और 2004 के बीच मामूली-से ही सही, चालू खाता अधिशेष दर्शाए।

एशियाई संकट की अवधि के बाद में अधिकांश पूर्वी एशियाई उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में बचतों की दरों ने, जो सामान्यतः औद्योगिक देशों की तुलना में उच्चतर रही है, मामूली-सी गिरावट दर्शाई। तथापि निवेश की दरों ने भारी गिरावट दर्शाई जिसके परिणाम स्वरूप उभरती

सारणी 1: अमरीका के समष्टिगत मापदंड

(प्रतिशत वार्षिक औसत में)

अवधि	सघउ वृद्धि	सीएडी/सघउ	सामान्य / सरकारी राजकोषीय शेष/ सघउ	बचत-निवेश अंतराल/सघउ
1	2	3	4	5
1981-85	3.3	-1.3	-2.9	-1.6
1986-90	3.3	-2.4	-2.4	-2.2
1991-95	2.5	-1.1	-3.1	-0.9
1996-2000	4.1	-2.6	-0.2	-2.2
2001-2005	2.4	-5	-3.5	-3.9

सारणी 2 : उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बचत-निवेश अंतराल

(सघउ के प्रति प्रतिशत, वार्षिक औसत)

देश	1981-85	1986-90	1991-95	1996-2000	2001-05
1	2	3	4	5	6
चीन	-0.1	-0.4	1.5	3.2	2.4 *
हांगकांग	3.9	9.8	3.2	1.1	8.6
भारत	-2.2	-1.5	-0.4	-1.4	-1.3 *
इंडोनेशिया	2.0	1.5	1.5	5.5	6.7
कोरिया	-1.7	4.1	-1.1	3.7	2.6 *
मलेशिया	-2.7	7.6	-1.6	13.9	19.7 *
सिंगापुर	-2.9	4.6	11.8	16.4	23.6
थाईलैंड	-4.4	-1.8	-5.3	6.4	4.5

टिप्पणी : * 2001-04 तक के चार वर्षों का औसत।
स्रोत : विश्व बैंक ऑनलाइन डाटाबेस।

बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में बचत-निवेश के बीच अंतराल और बढ़ गया (सारणी 2)। तथापि भारत इस प्रवृत्ति का अपवाद रहा और अभी भी उसका बचत निवेश अंतराल नकारात्मक बना हुआ है।

(iii) तेल निर्यातक देशों का अधिशेष

तेल निर्यातक देशों के भारी चालू खाता अधिशेष भी वैश्विक असंतुलनों में योगदान करने वाले नए स्रोतों के रूप में उभरे हैं। मध्य-पूर्व क्षेत्र ने 2005 में सघउ के 18.5 प्रतिशत का चालू खाता अधिशेष दर्शाया। मध्य पूर्व क्षेत्र में तेल राजस्व उच्च मूल्यों और उत्पादन में कुछ विस्तार के कारण 2006 की पहली छमाही में और बढ़ गए। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक/ डब्ल्यूईओ सितंबर (2006) द्वारा लगाए गए पूर्वानुमान के अनुसार 2006 के लिए यह अधिशेष और बढ़कर सघउ के 23 प्रतिशत तक (लगभग 280 बिलियन अमरीकी डॉलर का हो जाएगा। तेल निर्यातकों द्वारा उच्चतर निवल बचतों ने भी वैश्विक ब्याज दरों को नरम करने में योगदान किया और परिणामतः उन्होंने बाजार आधारित वित्तीय प्रणालियों जैसे अमरीका की अर्थव्यवस्था में मांग को बढ़ाया। अमरीकी वित्तीय बाजारों की गहनता और साथ ही प्रभावी जोखिम प्रबंधन के लिए नए उत्पादों के त्वरित नवोन्मेष ने वैश्विक निवेशकों की निधियों के लिए अमरीका को आकर्षक गंतव्य देश बना दिया है। इस कारण से वैश्विक असंतुलनों में होनेवाला कोई सुधार इस पर निर्भर करता है कि तेल उत्पादक देश अपनी घरेलू खपत की दृष्टि से बढ़ते हुए अपने तेल राजस्व का क्या करते हैं।

II. सुधार की ओर बढ़ना

वर्तमान में यह सहमति बढ़ती जा रही है कि अमरीकी उपभोक्ता विश्वव्यापी मांग को अनिश्चित काल तक समर्थन नहीं दे सकते तथा एशियाई उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाएं तथा तेल निर्यातक देश इनका वित्तपोषण सतत रूप से जारी नहीं रख सकते। फिर भी इनके सुधार की प्रक्रिया, इसके स्वरूप गति और परिणामों के बारे में भिन्न-भिन्न विचार

हैं। इस संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय समिति (आइएमएफसी) 22 अप्रैल 2006 की प्रेस विज्ञप्ति यह दोहराती है कि ''वैश्विक असंतुलनों के व्यवस्थित मध्यावधिक संकल्प एक साझा उत्तरदायित्व है तथा यह सदस्यों को तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय को महत्तर लाभ पहुँचाएगी, बनिस्पत अलग-अलग देशों द्वारा की जाने वाली कार्रवाई की तुलना में।'' व्यवस्थित वैश्विक पुनर्संतुलन लाने के मुख्य तत्वों में जिनकी आमतौर पर वकालत की जाती है, अमरीकी बचतों में वृद्धि, यूरो क्षेत्र तथा जापान में संरचनागत सुधार और उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में विनिमय-दर में नमनीयता शामिल हैं।

हाल के महीनों में देखी गई कुछ गतिविधियां भविष्य में वैश्विक असंतुलनों को सुधारने की दिशा में कुछ योगदान कर सकती हैं। ये नीचे दी गई हैं :

पहली, अमरीका में, मुख्यतः राजस्व में आए उछाल के कारण 2006 की दूसरी तिमाही में राजकोषीय घाटा घट कर सघउ का 2.0 प्रतिशत रह गया है। फेडरल कर-राजस्व 2005 और 2006 में अब तक उछाल भरे रहे हैं तथा व्यय के अनुशासन को बनाए रखा गया है जो यह सुझाता है कि राजकोषीय 2006 में फेडरल बजट घाटा प्रारंभिक बजट अनुमानों से बेहतर होगा और वह मामूली-सा गिरकर सघउ के 2.25 प्रतिशत रह सकता है (आइएमएफ 2006 सी)। अमरीकी फैड फंड दर बढ़कर 5.25 तक पहुँच चुकी है। हाल की अवधि में अमरीकी डालर का कुछ अन्य प्रमुख मुद्राओं की तुलना में मामूली-सा मूल्यह्रास हुआ है।

दूसरी, कुछ एशियाई उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं में देखे गए उच्चतर निवेश इन असंतुलनों को सुधारने में योगदान कर सकते हैं। चीन ने हाल ही में एक बहुत तेज निवेश वृद्धि दर्शाई है, हालांकि निवेश धूम-के फट पड़ने वाले चक्र की संभावना के बारे में चिंताएं पैदा हो गई हैं (डब्ल्यूईओ - सिंतबर 2006)। 2006 के पहली तीन तिमाहियों में चीन में अचल आस्तियों में कुल निवेश पिछले साल की इसी अवधि की तुलना में 27.3 प्रतिशत उच्चतर रहा है। जैसा चीनी नीति निर्माताओं द्वारा बार-बार दलील दी गई है - अब आवश्यकता इस बात की है कि चीनी खपत उनकी निवेश की वृद्धि से भी तेज गति से बढ़े।

तीसरी, बढ़ी हुई विदेशी मुद्रा विनिमय दर नमनीयता कुछ एशियाई देशों में देखी गई है। अमरीका डालर में कुछ मूल्यह्रास देखा गया है जबकि गैर-अमरीकी मुद्राओं में मूल्य वृद्धि हुई है। 2005 के दौरान अनेक विकासशील देशों की मुद्राओं के मूल्य में भी अमरीकी डालर की तुलना में तेजी से वृद्धि हुई है। साथ ही अधिक नमनीय विनिमय दर नीतियों की ओर भी कुछ बढ़ा गया है। यह सर्वाधिक रूप से चीन में देखा गया है जिसने अपनी मुद्रा का विनिमय मूल्य अमरीकी डालर की तुलना में लगभग 2.1 प्रतिशत तक का पुनर्मूल्यन किया है। मलेशिया ने भी इसीप्रकार के उपाय किए हैं। 2006 के दौरान यूरो/अमरीकी डालर की विनिमय दर में भारी परिवर्तन देखे गए (जो 2006 के प्रारंभ के प्रति यूरो 0.84 अमरीकी डालर से बदलकर सितंबर 2006 तक 0.78 अमरीकी डालर प्रति यूरो हो गया तो भी अमरीकी यूरो व्यापार स्वरूपों में कोई खास प्रभाव नहीं देखा गया है। इसे देखते हुए, संतुलनकारी प्रणाली-तंत्र के रूप में विनिमय दर की प्रभावशीलता की खोज किए जाने की जरूरत है। औद्योगिक देशों के लिए विनिमय दर का संक्रमणकालीन स्थिति में उपभोक्ता मूल्य-मुद्रास्फीति में 1990 के बाद के दशक में 1990 के दशक के पूर्व की अवधि की तुलना में लगभग आधी रह गई है (गगन और आइहरिग 2001)। इसके अलावा यह संक्रमण कालीन अवधि की स्थिति 1990 के बाद के दशक में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में विकासशील देशों में अधिक गिरी है (फ्रेंकेल, पार्सले और वैई, 2004)। वित्तीय नवोन्मेषन जैसे हेजिंग उत्पादों की उपलब्धता ने भी पास-थ्रो के स्तर को निम्न कर दिया है, जो निर्यातकों और आयातकों को अस्थायी आघातों को सहन करने में समर्थ बनाता है और भारी मुद्रागत घटबढ़ के बावजूद उत्पाद मूल्यों को स्थिर बना देता है। इसके अलावा, अध्ययनों ने यह भी बताया है कि ईएमई के बीच भी व्यापार शेषों पर विनिमय दर घटबढ़ का प्रभाव इस बात पर काफी अलग-अलग का होंगे कि क्या वे विनिर्माण क्षेत्र के निर्यातकों गैर-तेल पण्यों या तेल के प्रमुख निर्यातक हैं (एलेन 2006)।

सघउ में गैर-विपणनीयों को बढ़ते हुए अंश ने भी विनिमय दर को पार करने में इस संक्रमण को सीमित करने की दिशा में भी कार्य किया है। गैर-विपणनीयों ने, जो अकसर सेवाओं द्वारा अनुमानित किए जाते हैं, सभी प्रमुख औद्योगिक देशों और साथ ही चीन और भारत में भी अपने अंश में वृद्धि की है। जनसंख्या की आयु के अनुसार मांग वस्तुओं की अपेक्षा सेवाओं के पक्ष में बढ़ती है। इस प्रकार औद्योगिक देशों में बढ़ती हुई आयु वाली जनसंख्या ने सेवाओं के लिए काफी प्रोत्साहन प्रदान किया है। मांग की संरचना में सेवाओं के पक्ष में बदलाव के साथ, विनिमय दर के पारण की सीमी जो मुख्यतः विपणनीयों से होकर जाती है, सीमित रही है। घरेलू मूल्य प्रणाली-तंत्र के माध्यम से आर्थिक एजेंटों के व्यवहार को प्रभावित करने में विनिमय दरों के घटबढ़ का नीति प्रेरित समायोजनों की भूमिका उल्लेखनीय रूप से विकृत हो गई है। यदि विनिमय दर मूल्यह्रास (मूल्यवृद्धि) आयातित वस्तुओं के घरेलू मूल्यों को पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ाती (घटाती) है तो आयातित उत्पादों के लिए मांग में कमी (वृद्धि) होने की आशा बहुत कम है। अतः विनिमय दरों में छोटे मोटे परिवर्तनों से चालू खाते में परिवर्तन लाने में सहायता की अपेक्षा बहुत कम की जा सकती है (मोहन, 2005)।

इस प्रकार निम्नलिखित मुद्दे महत्वपूर्ण हो जाते हैं :

- क्या हाल की गतिविधियां अमरीका में कुछ घरेलू सुधार दर्शाएंगे - जो इसके चालू खाता घाटा में कमी लाएंगे ?

- क्या एशियाई देशों में निवेश बढ़ने के कोई अवसर हैं और क्या यह उनके अधिशेष को घटाएगा ?
- क्या विनिमय दर समायोजन चालू खाता के असंतुलनों को ठीक करने की दिशा में उल्लेखनीय रूप से योगदान करेगा ?

और आगे प्रयास

असंतुलनों को ठीक करने की दिशा में की गई प्रगति के बावजूद - और भी प्रयास किए जाने की जरूरत है जिसमें प्रत्येक देश को असंतुलनों के जुड़े मध्यावधिक जोखिमों को कम करने में सहायता करने के लिए अपनी-अपनी भूमिका अदा करनी होगी।

सुधार तथा डालर के अत्यधिक मूल्यह्रास को आघात पहुँचाये बिना अमरीका को घरेलू और सरकारी उधारियों को रोकने और राष्ट्रीय बचतों को सुदृढ़ करने की कोशिश करनी होगी। हालांकि राजस्व के उपायों का उद्देश्य राजस्व आधार को बढ़ाने तथा कर-प्रणाली को आयकर की बजाय खपत कर पर महत्तर जोर देते हुए अमरीका में राजकोषीय समेकन पर मुख्य ध्यान खर्च की ओर रखने की संभावना को खारिज नहीं किया जा सकता (डब्ल्यू ईओ, सितंबर 2006)। अमरीका में आवास बाजार में मंदी होने के साथ, निजी बचतों में कुछ वृद्धि की आशा की जा सकती है। इसमें और सहायता नीति संबंधी पहलों द्वारा मिलेगी - जैसे स्वास्थ्य बचत खातों की शुरुआत तथा पेंशन संबंधी विधेयक को पारित करना जो पारिवारिक बचतों के लिए प्रोत्साहन को बढ़ाएंगे।

घरेलू मांग को बढ़ाने तथा बहाली को व्यापक आधार देने के लिए यूरो क्षेत्र को संरचनागत सुधारों विशेषकर उत्पाद और श्रमिक बाजार नीतियों को आगे बढ़ाने की जरूरत है। जापान ने अंततः बहाली शुरू कर दी है। इसका चालू खाता घाटा 2004 में सघउ के 3.8 प्रतिशत से घटकर 2005 में सघउ के 3.6 प्रतिशत तक आ गया है और यह प्रवृत्ति 2006 में भी बनी हुई है जिसमें घरेलू मांग सुदृढ़ हो रही है। यह व्यापक रूप से मान लिया गया है कि जापान को अपनी वित्तीय प्रणाली को और सुदृढ़ करना चाहिए तथा अर्थव्यवस्था में और नमनीयता प्रदान करने के लिए अन्य संरचनात्मक सुधार लागू करने होंगे।

उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं के लिए विनिमय दर नीतियों में और भी नमनीयता वांछनीय है उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अत्यधिक रूप से हस्तक्षेप करना और अपनी प्रतिस्पर्धात्मकता को बनाए रखने के लिए अपनी विदेशी मुद्रा भंडार को निष्प्रभावी करने का कोई भी प्रयास समायोजन प्रक्रिया को और भी विलम्बित कर देगा। तथापि जैसा कि पहले संकेत किया गया है, कि जब तक विनिमय दरों में उल्लेखनीय परिवर्तन न किए जाएं तो यह लगता है कि वैश्विक असंतुलनों में सुधार की आशा नहीं की जा सकती। अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि अमरीका तथा शेष विश्व में अपरिवर्तित वृद्धि दरों के चलते अमरीकी डालर का लगभ 33 प्रतिशत तक मूल्यह्रास करना होगा और उतना ही गैर-अमरीकी मुद्राओं का मूल्यवृद्धि करनी होगी। - औसतन 50 प्रतिशत तक - ताकि अमरीकी व्यापार खाते को संतुलित किया जा सके (आब्सटफील्ड तथा रोगौफ - 2004, 2005)। एक अन्य अध्ययन ने यह दर्शाया है कि अमरीकी चालू खाता घाटा को 2 प्रतिशत के अंदर लाने के लिए डालर का वास्तविक रूप में 30 प्रतिशत तक मूल्यह्रास करना होगा (मूसा, 2004)।

तेल निर्यातक देशों में सुदृढ़ व्यापक आर्थिक नीतियों के साथ उच्चतर तेल राजस्वों को दक्षता पूर्वक खपाने का संवर्धन करना भी इस सुधारात्मक प्रक्रिया-तंत्र का मुख्य तत्व होना चाहिए। यह सुझाया गया है कि ये देश ऐसे क्षेत्रों में कुछ सीमा तक खर्च को बढ़ावा दे सकते हैं जहाँ सामाजिक प्रतिलाभ उच्च हैं जैसे-शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी संरचना तथा सामाजिक सुरक्षा। आर्थिक परस्पर संपर्कों को देखते हुए सभी देशों और क्षेत्रों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं की नमनीयता को बढ़ाकर तथा बदलते हुए वैश्विक मांग के स्वरूपों को अपनाकर अपनी-अपनी भूमिका अदा करनी होगी।

अब मैं 31 अक्तूबर 2006 को घोषित अपनी वार्षिक नीति की मध्यावधिक समीक्षा संबंधी वक्तव्य से उद्धृत करना चाहूंगा।

'2006 के दौरान वैश्विक असंतुलनों का बढ़ना जारी रहा। कुछ केंद्रीय बैंक अपनी-अपनी नीति गत जोर का सक्रियतापूर्वक पुनर्आकलन कर रहे हैं, वैश्विक चलनिधि के संभावित ड्रेनेज विश्व के वित्तीय बाजारों की जिजीविषा का परीक्षण करेगी और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर दृष्टिकोण का आकलन करेगी। इसी संदर्भ में जापान उदीयमान एशिया तथा तेल निर्यातक देशों में भारी अधिशेष के बने रहने के साथ-साथ 2007 में अमरीका के चालू खाता घाटा का सघउ के लगभग 7 प्रतिशत तक बने रहने के अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का पूर्व अनुमान चिंताजनक है। अमरीका की निवल विदेशी देयता की स्थिति में तेज वृद्धि जैसे-जैसे वैश्विक असंतुलन फैलेंगे ये प्रमुख मुद्राओं के अचानक और अव्यवस्थित समायोजनों का जोखिम बढ़ा हैं। तथापि, वैश्विक असंतुलनों के संबंध में नीति निर्माताओं और वित्तीय बाजारों दोनों द्वारा व्यक्त गंभीर चिंताओं में रोचक रूप से चुप्पी है, संभवतः इस धारणा पर कि समस्या की वैश्विक मान्यता स्वतः कार्रवाईयों को समंजित कर लेगी जो कठोरताओं से बचाएगी।

III. भारतीय स्थिति

हाल के वर्षों में, भारतीय अर्थव्यवस्था ने आबद्ध, नियंत्रित, मद गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था से एक अधिक खुली, उदारीकृत और विश्व की सबसे तेज गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था के रूप में भारी रूपांतरण को देखा है। जुलाई 1991 से भारत में शुरू हुए आर्थिक सुधारों ने इसकी वृद्धि की गति को तेज कर दिया है, इसकी स्थिरता को बढ़ा दिया है तथा बाह्य और वित्तीय क्षेत्र दोनों में इसे सशक्त बना दिया है। भारत विदेशी निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य रहा है। भारी पूंजी के अंतर्वाह के बावजूद, भारत चलनिधि का प्रबंधन करने में सफल रहा है। भारत का विदेशी मुद्रा भंडार उसकी कुल बकाया बाह्य ऋण से भी ज्यादा है। व्यापार

सारणी 3 :1970-71 से भारत के चालू खाता शेष का दायरा

(सघउ के प्रति वार्षिक औसत प्रतिशत)

चालू खाता शेष/सघउ का दायरा	बारम्बारता
1	2
चालू खाता अधिशेष	**6**
1 प्रतिशत के बराबर	2
1 से 2 प्रतिशत के बीच	4
चालू खाता घाटा	**30**
(-) 1 से 0 प्रतिशत के बीच	15
(-) 2 से (-) 1 से 0 प्रतिशत के बीच	11
(-) 3 से (-) 2 से 0 प्रतिशत के बीच	3
(-) 3 से (-) 4 से 0 प्रतिशत के बीच	1 बार (1990-91 में जब चालू खाता घाटा 3.1 प्रतिशत था)

स्रोत : भारतीय अर्थ व्यवस्था पर सांख्यिकी पुस्तिका : भारतीय रिज़र्व बैंक।

तथा वित्तीय क्षेत्र विश्व अर्थव्यवस्था के साथ पर्याप्त रूप से समन्वित है। संकट के समय अर्थात् पूर्व एशियाई संकट, 1997-98 का रूसी संकट तथा पोखरन के बाद पाबंदियों के समय में भी भारतीय अर्थव्यवस्था ने इन संक्रामक प्रभावों से अपने आप को बचाने में भारी जिजीविषा दर्शाई है।

1970 के बाद के दशक से भारत के चालू खाता ने केवल छह अवसरों पर (सारणी 3) अधिशेष दर्शाए हैं। घाटा मामूली-सा रहा है और अधिकांश वर्षों में सघउ के 2 प्रतिशत से नीचे रहा है। केवल 1990-91 में भुगतान संतुलन के संकट के कारण चालू खाता घाटा और सघउ का अनुपात 3 प्रतिशत से मामूली-सा ऊपर गया है। इस प्रकार इतने वर्षों से भारत का बाह्य खाता संतुलित रहा है, जो उसके तदनुरूपी बचत-निवेश अंतराल में भी प्रदर्शित हुआ है।

हाल की अवधि में अर्थात् 2001-02 से 2003-04 तक भारत ने चालू खाता अधिशेष का भी अनुभव किया हालांकि इसकी मात्रा कम थी और यह अनिवार्यतः कंपनी पुनर्संरचना के साथ-साथ दशक के पहले भाग में कारोबारी चक्र के मंद पड़ जाने के फलस्वरूप था। कारोबारी चक्र के पलट जाने से निवेशों में 2004-05 में वृद्धि हुई और भारत पुनः चालू खाता घाटा के परिदृश्य में वापस पहुँच गया। कच्चे तेल के अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के उच्चस्तर के संचयी प्रभाव तथा सुदृढ़ औद्योगिक गतिविधियों से उत्पन्न आयातों में वृद्धि को दर्शाते हुए चालू खाता घाटा 2005-06 के दौरान पुनः बढ़ गया। उछाल भरे सॉफ्टवेयर निर्यातों, विप्रेषणों और व्यावसायिक तथा विभिन्न कारोबारी से उत्पन्न 2005-06 के दौरान इसके अदृश्य अधिशेष में निरंतर वृद्धि बढ़ते हुए वणिक व्यापार घाटे के प्रभाव को संतुलित करती रही। वर्तमान पूर्व अनुमानों के अनुसार, 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान (2007-08 से 2011-12 तक) चालू खाता घाटे में बने रहने का अनुमान है और सामान्य तथा स्थिर पूंजी के अंतर्वाह इस घाटे का वित्त पोषण सुविधा से कर पाएंगे।

अनेक एशियाई उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्था से भिन्न जहाँ चालू खाता अधिशेषों ने इन अर्थव्यवस्थाओं के विदेशी मुद्राभंडार के संचयन में मुख्य योगदान किया है, वहीं भारत में विदेशी मुद्रा भंडार का संचयन मुख्यतः भारी पूंजी आगमों के कारण हुआ है तथा चालू खाता अधिशेष की भूमिका इस संबंध में केवल कुछ वर्षों के लिए रही है और वह भी न्यूनतम। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत ने इस रूप में वैश्विक असंतुलनों को बढ़ाने में कोई योगदान नहीं किया है।

भारत की व्यापक नीति में वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के लिए भारी दबाव का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। समग्र रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था और विशेषकर वित्तीय क्षेत्र, अब कहीं अधिक ऊर्जस्वित है और वह वित्तीय आघातों को खपाने के लिए बेहतर स्थिति में है। यह ऊर्जास्विता व्यापक आर्थिक बुनियादी तत्वों तथा विनियामक ढांचे में सुधार लाकर प्राप्त की गई है। इसके अलावा, कुछ उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न, जिन्होंने मांग को मुख्यतः बाह्य स्रोतों से प्रेरित देखा है, भारतीय अर्थव्यवस्था अधिकांशतः घरेलू मांग से प्रेरित है। जहाँ भारत के निर्यात सघउ के 11.5 प्रतिशत बैठते हैं, वहीं विश्व व्यापार में इसका अंश मात्र 0.8 प्रतिशत है। दूसरा, भारत का निर्यात समूह काफी विशाखीकृत है (रेड्डी, 2005)। अतः सारे विश्व में वृद्धि के स्वरूपों में उद्वेगशीलता के प्रति इसका जोखिम अधिकांश इएमइ की तुलना में सीमित ही है। पिछले तीन वर्षों में भारत में उच्चतर सघउ वृद्धि ने बचतों में भी 2000-2001 के दौरान 23.5 प्रतिशत की बचत की दरों को 2004-05 में 29.1 प्रतिशत तक बढ़ते हुए देखा है। सार्वजनिक क्षेत्र की बचतों में बदली हुई प्रवृत्ति देशी बचतों में वृद्धि का मुख्य कारण रहा है। राजकोषीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबंध अधिनियम (एफआरबीएन) के अंतर्गत परिकल्पित सुधारों की पहलों को देखते हुए, सार्वजनिक बचतों को और बढ़ने के अनुमान है। इसके अलावा, भारत में परिवार बचतों में प्रमुख योगदानकर्ता हैं और अगले 20 वर्षों तक भारतीय जनसंख्या के आंकड़ों की अनुकूलता को देखते हुए भारत में बचतों की दरें उच्च ही बने रहने की आशा है। यह अन्य पूर्व एशियाई देशों तथा अमरीकी की स्थिति के बिल्कुल विपरीत है जहाँ बचतों में मुख्य योगदान कर्ता कंपनियां हैं जो अधिकांशतया अर्थव्यवस्था के चक्रीय पथ पर निर्भर करती है।

IV. वैश्विक असंतुलनों का भारत पर संभावित प्रभाव

राजकोषीय

अंतरराष्ट्रीय मानकों के हिसाब से भारत का राजकोषीय घाटा उच्च बना हुआ है, हालांकि हाल के वर्षों में इसमें काफी गिरावट आई है। वहनीय राजकोषीय सुधार और समेकन प्राप्त करने के लिए केंद्र और राज्यों दोनों की सरकारों ने राजकोषीय उत्तरदायित्व प्रावधानों अर्थात् राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम को अपना लिया है। केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त राजकोषीय घाटा कम होकर 2007 तक लगभग 6.5 प्रतिशत तक आने की आशा है (सारणी 4)। यदि यह भी मान लिया जाए कि केंद्र और राज्य अपने-अपने एफआरबीएम का

सारणी 4 : केंद्र और राज्य सरकारों का साझा सकल राजकोषीय घाटा

(सघउ के प्रति औसत वार्षिक प्रतिशत)

अवधि/ वर्ष	साझा घाटा
1	2
1980-81 से 1984-85	7.19
1985-86 से 1989-90	8.88
1990-91 से 1994-95	7.75
1995-96 से 1999-00	7.73
2000-01 से 2004-05	9.00
2005-06 सं.अ.	7.45
2006-07 ब.अ.	6.50

सं.अ. : संशोधित अनुमान। ब.अ.: बजट अनुमान।

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी पुस्तिका, 2005-06 भारतीय रिज़र्व बैंक।

सारणी 5 : निजी कंपनियों को विदेशी पूंजी जोखिम: निजी कंपनी क्षेत्र का बाह्य ऋण

(सघउ के प्रति औसत वार्षिक प्रतिशत)

वर्ष	बिलियन अमरीकी डालर में	प्रारक्षित निधियों के प्रति प्रतिशत
1	2	3
1991	—	
1996	5.0	23.0
2001	15.6	36.9
2006	32.4	21.4

— : नगण्य।

स्रोत : भारत का बाह्य ऋण : स्थिति रिपोर्ट, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

अनुपालन करें तो भी उनका साझा राजकोषीय घाटा 2009-10 तक 6 प्रतिशत से उच्च बना रहेगा। आम तौर पर यह माना जा सकता है कि भारत इस मद के कारण वैश्विक असंतुलनों के प्रभाव से कुछ सीमा तक प्रभावित बना हुआ है। तथापि, भारत का मामला अलग है, क्योंकि सरकार घरेलू ऋणों के वित्त पोषण के लिए बाह्य वित्तों का सहारा नहीं लेती है। यह स्थिति भारत को वैश्विक असंतुलनों के परिणामों से प्रभावित न होने में सहायता करेगी।

इसके अलावा, भारतीय रिज़र्व बैंक और भारत सरकार दोनों ने सरकारी प्रतिभूति बाजार के विकास के लिए विभिन्न पहलें की हैं। नियंत्रित बाजार की स्वतः मौद्रीकरण वाली पूर्ववर्ती विशेषता को समाप्त कर दिया गया है। आज भारतीय सरकारी प्रतिभूति बाजार ज्यादा व्यापक आधार वाला है, जिसमें एक दक्ष नीलामी प्रक्रिया है, एक सक्रिय द्वितीयक बाजार है जिसे सक्रिय प्राथमिक व्यापारी प्रणाली तथा इलैक्ट्रोनिक ट्रेडिंग और निपटान प्रौद्योगिकी का समर्थन प्राप्त है (मोहन, 2006)।

तथापि वैश्विक असंतुलनों का प्रभाव अप्रत्यक्ष हो सकता है जो अंतरराष्ट्रीय दरों में वृद्धि के परिणाम स्वरूप घरेलू ब्याज दरों में वृद्धि के माध्यम से पड़ सकता है। सरकार की उधारियों की लागत में वृद्धि हो सकती है। तथापि, चूंकि अधिकांश बकाया ऋण निश्चित ब्याज दरों पर है, न कि सचल दरों पर, अतः उधार की लागत में बढ़ोत्तरी वृद्धिशील होगी। यह स्थिति राजकोषीय घाटे पर अत्यधिक प्रभाव डाले बिना, जबभी आवश्यक हो नीतिगत दरों का समायोजन करने के लिए लचीली मौद्रिक नीति अपनाने का अवसर भी प्रदान करती है (रेड्डी 2005)।

निजी कंपनी क्षेत्र

निजी कंपनियों द्वारा बाह्य उधार लेने को अब भारत में काफी उदार बना दिया गया है। निजी कंपनियों के बाह्य ऋण की मात्रा मार्च 1996 के अंत के लगभग 5 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर मार्च 2001 के अंत में 15.6 बिलियन अमरीकी डालर और मार्च 2006 के अंत में और बढ़कर 32.4 बिलियन अमरीकी डालर की हो गई (सारणी 5)। संभावित रूप से कंपनियां भविष्य में और अधिक उधार लेंगी और इसलिए वैश्विक असंतुलनों के संभावित परिणामों से प्रभावित हो सकती हैं। यदि समायोजन प्रक्रिया के फलस्वरूप ब्याज दरों और विनिमय दरों में तेज घट-बढ़ होती है तो वे कंपनियां जिन्होंने अलग-अलग दरों पर उधार लिया है, अपनी-अपनी उधार की मात्रा तथा जोखिम से निपटने की अपनी गतिविधियों की दक्षता के आधार पर विनिमय दर और ब्याज दर जोखिम दोनों से प्रभावित हो सकती है। तथापि भारत में पूंजी खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता के बिना भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक समग्र वृद्धिशील ऋण जोखिमों को नियंत्रित करते हैं तथा कुल बाह्य वाणिज्यिक उधार राशियों पर उच्चतम सीमा निर्धारित करते हैं। इसके अलावा, भारत में कंपनियों को अपनी विदेशी मुद्रा जोखिमों को सुरक्षित करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

वित्तीय मध्यस्क

भारत में, बाह्य ऋण के प्रति वित्तीय मध्यस्थकों का जोखिम सीमित तथा विनियमित है। उनकी विदेशी मुद्रा उधार राशियां उनकी टीयर I पूंजी के 25 प्रतिशत की विवेक-सम्मत सीमा के अंदर तक सीमित की गई हैं। ये सीमाएं 31 मार्च 2006 को 2.7 बिलियन अमरीकी डालर की थीं। विदेशों में संसाधन जुटाने में बैंकों को समर्थ बनाने की दृष्टि से 31 अक्तूबर 2006 को अपनी नवीनतम मौद्रिक नीति संबंधी घोषणा में इस सीमा को अपनी टीयर I पूंजी के 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत या 10 मिलियन अमरीकी डालर जो भी अधिक हो कर दिया गया है। इस उच्चतम सीमा से अधिक की बैंकों की विदेशी मुद्रा उधार राशियों को उनकी निवल मालियत से संबद्ध कर दिया गया है, ये उधार राशियां पूर्णतः निर्यात के वित्तपोषण के प्रयोजन के लिए होंगी और अधिक पूंजीखाते की लगभग पूर्ण परिवर्तनीयता की ओर बढ़ने की दृष्टि से, बैंक संभवतः विदेशी मुद्रा बाजारों में और अधिक पहुंच बनाएंगे जो बैंकिंग प्रणाली की जोखिम प्रबंधन की अपनी क्षमताओं को और भी बढ़ाने की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

भारत में बैंक आस्तियों, आवास ऋणों, खुदरा बाजार तथा इक्विटियों में निवेश को वित्तपोषित करते रहे हैं। अनेक उदीयमान बाजारी

अर्थव्यवस्थाओं की तरह आस्तिमूल्य तथा इक्विटी मार्केट ने भारत में हाल की अवधि में बढ़ने की प्रवृत्ति दर्शाई है। यदि पूंजी के अंतर्वाह में कोई प्रत्यावर्तन हुआ तो आस्ति मूल्यों में गिरने की संभावना हो सकती है जैसा कि मई 2006 में देखा गया। तथापि बैंकों के तुलन-पत्र पर सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रभाव उनके निवेश संविभाग के माध्यम से देखा जा सकता है। भारत में बैंक सरकारी तथा अन्य निश्चित आयवाली प्रतिभूतियों में भारी निवेश किए हुए हैं। जिस सीमा तक अंतरराष्ट्रीय ब्याज दरें घरेलू ब्याज दरों को प्रभावित करती हैं। यह निवेश संविभागों को बाजार के प्रति बाजार के आधार पर हानियों का भार डालेगी (रेड्डी 2006)।

किन्हीं अप्रत्याशित घटनाओं को रोकने के लिए रिज़र्व बैंक बैंकों के जोखिमपूर्ण आस्तियों के प्रति ऋण/ निवेश को लगातार निगरानी करता रहा है और उनके इक्विटी बाजार के प्रति जोखिमों पर सीमा लगा दी गई है। इस क्षेत्र के लिए जोखिम भारित आस्तियों के लिए 12 प्रतिशत की पूंजी अनुपात रखने की अपेक्षा के अलावा, ब्याज दर जोखिम से निपटने के लिए विशेष कदम उठाए गए हैं। बाजार जोखिम के प्रति पूंजी के लिए अलग से प्रावधान किया गया है।

मौद्रिक नीति का संचालन

यह ज्यादा महत्वपूर्ण है कि मौद्रिक नीति के प्रभाव को देखा जाए। जैसा कि कुछ समय पहले कोलंबों में अपने एक भाषण में मैंने संकेत किया था, (मोहन 2004) वैश्विकीकृत विश्व में अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों से असम्पृक्त मौद्रिक नीति को बनाना कठिन है। मौद्रिक नीति अब अधिक जटिल हो गई है और केंद्रीय बैंकों को अब मौद्रिक नीति कर निर्माण करते समय अन्य मुद्दों के बीच वैश्विक आर्थिक स्थिति में गतिविधियों, अंतरराष्ट्रीय स्फीतिकारी स्थिति, ब्याज दर परिदृश्य, विनिमय दर गतिविधियों और पूंजी प्रवाहों को भी ध्यान में रखना होता है। इसके अलावा भारत जैसे विकासशील देशों के मौद्रिक प्राधिकारियों के समक्ष मूल्य स्थिरता जितना ही महत्व उत्पादों और रोजगार को अधिकतम करने से संबंधित मुद्दों को भी देना होता है। जहाँ तक भारत की मौद्रिक नीति पर समायोजन नीतियों के प्रभाव का प्रश्न है, मुद्राओं का कोई उल्लेखनीय पुनर्समायोजन तथा ब्याज दरों में वृद्धि वैश्विक वृद्धि को प्रभावित कर सकती है, जो इसके परिणामस्वरूप भारत सहित अनेक उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि की संभावनाओं को प्रभावित करेगी। मौद्रिक नीति के संचालन को मुद्रास्फीति के प्रति इन जोखिमों को निम्नमुखी करना होगा तथा वृद्धि बनाम मूल्य स्थिरता की दृष्टि से नाजुक संतुलन को बनाए रखने के लिए जोखिमों का पुनर्मूल्यन करने के कारण वित्तीय बाजारों में आने वाले किसी प्रकार की उथल-पुथल को भी ध्यान में रखना होगा। हाल के वर्षों में भारतीय मौद्रिक नीति के निर्माण की एक मुख्य विशेषता घरेलू और वैश्विक दोनों कारकों को ध्यान में रखने की रही है तथा विभिन्न जोखिमों से जब भी वे उत्पन्न हों, उसकी रक्षा करने की रही है। अब भारतीय अर्थव्यवस्था कहीं अधिक जीवंत है और वित्तीय आघातों को खपाने की बेहतर स्थिति में है।

जैसा कि 31 अक्तूबर 2006 को वर्ष 2006-07 के लिए घोषित वार्षिक नीति की मध्यावधिक समीक्षा संबंधी हमारे वक्तव्य में इंगित किया गया है -

'अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किसी प्रतिकूल या अप्रत्याशित गतिविधियों के उभरने को छोड़कर तथा मुद्रास्फीति के लिए दृष्टिकोण सहित अर्थव्यवस्था के चालू आकलन को ध्यान में रखते हुए आगे आनेवाली अवधि में मौद्रिक नीति का समग्र जोर होगा -

- ऐसा मौद्रिक और ब्याज दर परिवेश सुनिश्चित करना जो अर्थव्यवस्था में निर्यात और निवेश की मांग का समर्थन करे ताकि मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को नियंत्रित करने की दृष्टि से मूल्य स्थिरता को बनाए रखते हुए वृद्धि की गति को जारी रखने में समर्थ बना सके,
- व्यापक आर्थिक और विशेषकर वित्तीय स्थिरता पर जोर को बनाए रखना,
- उभरती हुई वैश्विक और घरेलू स्थिति के लिए उपयुक्त सभी संभव उपायों पर तत्परता से विचार करना।'

अंतर्निहित जोखिम

भारतीय अर्थव्यवस्था के इन सकारात्मक पहलुओं के होते हुए भी, जैसा कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी विभिन्न मौद्रिक नीतिगत वक्तव्यों में इंगित किया गया है, अभी भी अंतर्निहित जोखिम विद्यमान हैं।

पहला, उच्च तेल मूल्यों के कारण मांग में वृद्धि सबसे बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती है। भौगोलिक अनिश्चितताओं और आपूर्तिगत व्यवधानों के कारण तेल बाजार 2005 और 2006 की पहली छमाही के दौरान अत्यधिक उद्वेगशील रहे। औसत अंतरराष्ट्रीय तेल मूल्य 2002 के लगभग 25 अमरीकी डालर प्रति बैरल से बढ़कर 2005 में 54 अमरीकी डालर प्रति बैरल और मध्य जुलाई 2006 के आसपास 73 अमरीकी डालर प्रति बैरल पर पहुँच गए। हालांकि तेल के मूल्य अभी हाल की अवधि में (सितंबर 2006 के दौरान 61 अमरीकी डालर प्रति बैरल) कुछ नरम हुए है, परंतु वे अभी भी उच्च स्तरों पर बने हुए हैं। तंग वैश्विक मांग आपूर्ति के परिदृश्य के साथ-साथ मध्य-पूर्व में जारी भौगोलिक तनावों और अन्य प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्रों में संभावित व्यवधानों को देखते हुए, विशेषकर तेल आयातक विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए, मध्यावधिक दृष्टिकोण भी कोई ज्यादा सुभीता प्रदान करता हुआ नहीं लगता। हालांकि अंतरराष्ट्रीय तेल मूल्यों में वृद्धि को देशी उपभोक्ताओं पर आगे लागू करना सरकारी नीतियों के कारण भारतीय संदर्भ में सीमित ही है, परंतु आयात बिलों में होने वाली वृद्धि के माध्यम से व्यापार घाटे पर इसके प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। यह स्थिति तेल उत्पादक देशों में उच्चतर अधिशेष निर्मित करके वैश्विक असंतुलनों को और भी बिगाड़ देती है।

दूसरे, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत ने प्रत्यक्षतः वैश्विक असंतुलनों में कोई योगदान नहीं किया हैं और वैश्विक असंतुलनों के परिणामों से अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त स्थरीकरण अंतः निर्मित कर लिए हैं। तथापि वैश्विक असंतुलनों के किसी अव्यवस्थित घटनाओं के होने पर उसके वैश्विक प्रभाव पड़ सकते हैं और वे भारतीय अर्थव्यवस्था को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकती हैं। वह गति जिससे अमरीका का चालू खाता अंततः संतुलन को और लौटता है, वे प्रेरक जो उस समायोजन को प्रेरित करते हैं, तथा वह तरीका जिसमें समायोजन का भार शेष विश्व पर आबंटित किया जाता है, उसके वैश्विक विनिमय दरों के लिए असंख्य निहितार्थ होंगे। निजी कंपनियां और वित्तीय मध्यस्थक संस्थाएं विनिमय दर जोखिमों को झेलेंगी यदि ये परिवर्तियां भारी घटबढ़ दर्शाती हैं, हालांकि इसके प्रभाव अन्य उदीयमान बाजारी अर्थ व्यवस्थाओं की अपेक्षा कुछ कम हो सकते हैं।

तीसरा, प्रमुख केंद्रीय बैंकों द्वारा मौद्रिक नीति संबंधी जोर को कठोर किए जाने से उच्चतर ब्याज दरों के कारण ब्याज दरों के पुनर्समायोजन और मंद निवेश वृद्धि के मामले में उदीयमान और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की ओर से वैश्विक पूंजी प्रवाहों का कोई प्रत्यावर्तन अन्य अंतर्निहित जोखिम रहते हैं।

चौथे, घरेलू गतिविधियां कुछ अंतर्निहित जोखिमों के साथ शक्ति और ऊर्जस्विता को भी दर्शाती हैं। वृद्धि की गति में कुछ तेजी आई है, जो अर्थव्यवस्था के सभी घटक क्षेत्रों में फैलती हुई प्रतीत होती है। घरेलू वित्तीय बाजारों ने स्थिर और व्यवस्थित स्थितियां दर्शाई हैं। बाह्य क्षेत्र में, इस बात के संकेत हैं कि उसमें शक्ति आ रही है और चालू खाता घाटा का अब तक भलीभांति प्रबंधन किया गया है। दूसरी ओर, ऋण की गुणवत्ता पर तेजी से ऋण की वृद्धि और दबावों से बढ़ते हुए मांग जन्य दबाव और संभावित जोखिमों के संकेत हैं। मौद्रिक विस्तार के उच्च स्तरों और चलनिधि की स्थिति के विकास की मुद्रास्फीति के प्रति जोखिमों के किसी संकेतों के लिए निरंतर रूप से निगरानी करने की जरूरत होगी। आस्ति मूल्यों के बढ़े हुए स्तर भी व्यापक आर्थिक तथा वित्तीय स्थिरता के लिए दृष्टिकोण के प्रति जोखिम का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। संक्षेप में, वर्तमान स्थिति में, नीतिगत प्रयोजनों के लिए दो प्रमुख मुद्दे, जो परस्पर विरोधी अवरोध दर्शाते है, वे हैं - बढ़ी हुई और सुदृढ़ होती हुई अर्थव्यवस्था के दोहन के प्रति अपेक्षित नीतिगत प्रतिसाद तथा व्यापक आर्थिक गतिविधियों के विकास पर पूर्ववर्ती नीतिगत कार्रवाईयों के पश्चवर्ती प्रभाव।

V. निष्कर्षात्मक टिप्पणियां

सारांश रूप में, पहले आबद्ध अर्थव्यवस्था होने के कारण भारत तुलनात्मक रूप से वैश्विक गतिविधियों से सुरक्षित रहा और इसलिए उनसे निपटने में उसका कोई अनुभव नहीं है। पिछले पंद्रह वर्षों के दौरान वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ-साथ, अपने बुनियादी तत्वों को सुधारते हुए तथा वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए कुछ अंतर्जात उपाय करने के साथ-साथ भारत काफी सीमा तक खुली अर्थव्यवस्था वाला हो गया है। समग्र दृष्टिकोण ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कुछ प्रमुख वैश्विक जोखिमों से निपटने के लिए पर्याप्त शक्तिप्रदान कर दी है। भारतीय वृद्धि की संभावनाएं भविष्य में बहुत अच्छी है तथा विनिमय दरों और अंतरराष्ट्रीय ब्याज दरों में आए किसी आकस्मिक और तेज बदलाव के माध्यम से आए वैश्विक असंतुलनों में आए किसी उल्लेखनीय सुधार को ध्यान में रखा जाएगा।

संदर्भ

एलेन, मार्क (2006) 'एक्सचेंज रेट्स एण्ड ट्रेड बेलेंस एडजस्टमेंट इन इमर्जिंग मार्केट इकॉनोमीज ' आइएमएफ स्टाफ पेपर, अक्तूबर 2006.

बैरो रोबर्ट तथा जे.डब्ल्यू.ली (2003), ''ग्रोथ एण्ड इन्वेस्टमेंट इन ईस्ट एशिया बिफोर एण्ड आफ्टर दि फाइनेंसियल क्राइसेस'' सियोल जर्नल ऑफ इकॉनामिक्स, खण्ड 16 सं.2.

फ्रेंकेल जे.पार्सले डी तथा वी एस जे (2005) 'स्लो पास थ्रो अराउंड दि वर्ल्ड : ए न्यू इम्पोर्ट फार दि डवलपिंग कंटरीज ?' वर्किंग पेपर सं.116, सेंटर फार इंटरनेशनल डेवलपमेंट, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी.

ग्रेग्नॉन, जोसेफ एण्ड आइरिंग जेन (2001) : 'मोनेटरी पालिसी एण्ड एक्सचेंज रेट पास थ्रो' एफआरबी इंटरनेशनल फाइनेंस डिशकशन पेपर सं. 764, जुलाई 2001.

ग्रगोरियो जे. (2005) 'ग्लोबल इन्बेलैंसिस एण्ड एक्सचेंज रेट एडजस्टमेंटस' सेंट्रल बैंक ऑफ चिली, सितंबर 2005.

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2005), आइएमएफ वर्ल्ड इकानामिक आउटलुक, सितंबर 2005.

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2005(क)), आइएमएफ वर्ल्ड इकानामिक आउटलुक, अप्रैल 2005.

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2005(ख), अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय समिति (आइएमएफसी) द्वारा जारी प्रेस विज्ञाप्ति 22 अप्रैल 2006.

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2005(ग)), अनुच्छेद IV कन्सलटेशन विद दि यूनाइटेड स्टेटस, पब्लिक इन्फोर्मेशन नोटिस, 28 जुलाई 2006.

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2005(घ)), अनुच्छेद IV कन्सलटेशन विद दि यूनाइटेड स्टेटस, पब्लिक इन्फोर्मेशन नोटिस, सितंबर 2006.

मोहन राकेश (2004) : वैश्विक संदर्भ में मौद्रिक नीति के लिए चुनौतियां, भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जनवरी 2004.

मोहन राकेश (2005) : समकालीन मौद्रिक नीति के लिए कुछ स्पष्ट पहेलियां, भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन दिसंबर 2005.

मोहन राकेश (2006) : 'भारतीय ऋण बाजार में हाल की प्रवृत्तियां तथा वर्तमान पहलें', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, अप्रैल 2006.

मूसा.एम.(2004): एक्सचेंज रेट एडजस्टमेंटस नीडिड टू रिड्यूश ग्लोबल पेमेंट इन्वेलेंसेस इन डालर एडजस्टमेंट, हाउ फार ? अगेंस्ट ह्वाट ? बी.एफ.वर्गस्टन एण्ड जे. विलियमसन (संपादित) - इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल इकानामिक्स वाशिंग्न डी.सी.

आब्सफील्ड, एम.एण्ड केनेथ एस.ऐगौफः 'दि अनसस्टेनेबिल यूएस करेंट अकाउंट पाशिसन रिवील्ड' - एनबीइआर वर्किंग पेपर सं. 10869, नवंबर 2004.

आब्सफील्ड, एम.एण्ड केनेथ एस.रोगौफ (2005): 'ग्लोबल करेंट अकाउंट इम्बेलेंसेस एण्ड एक्सचेंज रेट एडजस्टमेंटस', दि ब्रेकिंग्स इन्स्टिट्यूशन, 2005.

रेड्डी, वाई.वी.(2005): 'उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं के लिए वैश्विक वित्तीय असंतुलनों के निहितार्थ' -भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, दिसंबर 2005.

रेड्डी. वाई.वी. (2006): 'वैश्विक असंतुलन - एक भारतीय परिदृश्य, फाइनेंसिंग फॉर डेवलपमेंट (एफएफडी) आफिस डिपार्टमेंट ऑफ इकानामिकस तथा सोशियल आफिस (डीइएसए) यूनाटेड, नेशनल, न्यूयार्क' 11 मई 2006, को भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जून 2006.

भारतीय रिज़र्व बैंक (2006) : वर्ष 2006-07 के लिए वार्षिक नीति की मध्यावधिक समीक्षा, अक्तूबर 2006.